अध्याय 6

ग्रामीण समाज में परिवर्तन के उपकरण– पंचायतीराज, राजनैतिक दल, दबाव समूह

ग्रामीण समाज में परिवर्तन किन कारकों से अर्थात् किन कारणों से आता है? परिवर्तन लाने वाले जो कारक हैं, उन्हीं को परिवर्तन के उपकरण भी कह सकते हैं। प्रस्तुत अध्याय में जिन उपकरण की चर्चा हम करेंगे, वे एक प्रकार से संस्थागत अभिकरण के रूप में हैं। इसलिए स्पष्ट हो जाना चाहिए कि ग्रामीण समाज में परिवर्तन के उपकरण केवल कारक अथवा कारण ही नहीं हैं। उनके साथ में संस्थाओं के रूप में भी हैं। अत: हम उन तीन महत्त्वपूर्ण संस्थागत अभिकरणों की विवेचना करेंगे जो भारतीय समाज में परिवर्तन के कारक कहे जा सकते हैं।

पंचायतीराज

भारत गाँवों का देश है। गाँवों की प्रगति एवं उन्नति पर ही भारत की प्रगति एवं उन्नति निर्भर करती है। गाँधीजी ने ठीक ही कहा था कि यदि गाँव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जाएगा। इसलिए संविधान के अनुच्छेद 40 में राज्यों को पंचायतों के गठन का निर्देश दिया गया है। इसके साथ ही संविधान की 7वीं अनुसूची (राज्य सूची) की प्रविष्टि-5 में ग्राम पंचायतों को शामिल करके उनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार भी राज्य को दिया गया। 1993 में संविधान में 73वाँ संशोधन करके पंचायतीराज संस्था को संवैधानिक मान्यता दी गई और संविधान में भाग 9 को पुन: जोड़कर तथा इस भाग में 16नये अनुच्छेदों और संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर पंचायत के गठन, पंचायत के सदस्यों का चुनाव, सदस्यों के लिए आरक्षण तथा पंचायत के कार्यों के सम्बन्ध में व्यापक प्रावधान किए गए।

स्वतंत्रता के पश्चात् सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सफलता को परखने के लिए 1957 में श्री बलवन्त राय मेहता अध्ययन दल का गठन किया गया। अध्ययन दल को सौंपे गए कार्यों में, एक कार्य जिसका कि दल को अध्ययन करना था, कि कार्य सम्पादन में अधिक तीव्रता लाने के उद्देश्य से कार्यक्रम का संगठनात्मक ढाँचा तथा कार्य करने के तरीके कहाँ तक उपयुक्त थे। इस दल ने सरकार को बताया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की बुनियादी त्रुटि यह है कि जनता का इसमें सहयोग नहीं मिला। अध्ययन दल ने सुझाव दिया कि एक कार्यक्रम को, जिसका लोगों के दिन-प्रतिदिन के जीवन से सम्बन्ध है, केवल उन लोगों के द्वारा ही क्रियान्वित किया जा सकता है। इस अध्ययन दल की रिपोर्ट में कहा गया कि जब तक स्थानीय नेताओं को जिम्मेदारी व अधिकार नहीं सौंपे जाते, संविधान के निर्देशक सिद्धान्तों का विकास सम्बन्धी लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। मेहता अध्ययन दल ने 1957 के अन्त में अपनी रिपोर्ट दी। रिपोर्ट में यह सिफारिश की गई कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु पंचायतीराज संस्थाओं की तुरन्त शुरुआत की जानी चाहिए। अध्ययन दल ने इसे '**लोकतंत्रीय विकेन्द्रीकरण**' का नाम दिया।

इस प्रकार लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और विकास कार्यक्रमों में जनता का सहयोग लेने के ध्येय से पंचायतीराज की शुरुआत की गई। इनके स्वरूप में विभिन्न राज्यों में कुछ अन्तर था, मगर कतिपय विशेषताएँ एक-सी थीं।

(1) पंचायतीराज की तीन सीढ़ियाँ थीं-ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद्।

(2) पंचायतीराज प्रणाली में स्थानीय लोगों को काम करने की आजादी थी और देखरेख उच्च स्तर से होता था।

(3) सामुदायिक विकास कार्यक्रम की भाँति यह शासकीय ढाँचे का अंग नहीं था। पंचायतीराज संस्थाएँ निर्वाचित होती थीं और उसके कर्मचारी जनप्रतिनिधियों के अधीन काम करते थे।

(4) साधन जुटाने और जनसहयोग संगठित करने का भी इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार था।

पंचायतीराज की आवश्यकता तथा महत्त्व– पंचायतें पुराने समय में भी विद्यमान थीं मगर वर्तमान पंचायती संस्थाएँ इस मामले में भी नई हैं कि उनको पर्याप्त अधिकार, साधन और जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं। नाम पुराना है मगर संस्थाएँ नई हैं। इनका महत्त्व एवं आवश्यकता निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट है–

1. भारतीय समाज में स्वच्छ/स्वस्थ प्रजातांत्रिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए पंचायत व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन-सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। यह संस्था ग्रामवासियों में प्रजातांत्रिक संगठनों के प्रति रुचि स्थापित करती है।
2. ये संस्थाएँ भावी भारत का नेतृत्व तैयार करती हैं। विधायकों, मंत्रियों एवं जनप्रतिनिधियों को प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण

प्रदान करती हैं, जिससे वे ग्रामीण सामाजिक समस्याओं से अवगत होते हैं। इस प्रकार ग्रामीण विकास कार्यों में जनता की रुचि बढ़ाने में पंचायतों का प्रभावी योगदान है।

3. पंचायतीराज संस्थाएँ केन्द्र एवं राज्य सरकारों को स्थानीय समस्याओं के भार से हल्का करती हैं। उनके द्वारा शासकीय शक्तियों एवं कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है। शासकीय सत्ता गिनी-चुनी संस्थाओं में न रहकर गाँव की पंचायत के कार्यकर्ताओं के हाथों में पहुँच जाती है।
4. पंचायतों के कार्यकर्ता और पदाधिकारी स्थानीय समाज व राजनीतिक व्यवस्था के बीच की कड़ी हैं। इन स्थानीय पदाधिकारियों के बिना ऊपर से प्रारम्भ किये गये राष्ट्र निर्माण के क्रियाकलापों का चलना मुश्किल हो जाता है। पंचायतों के सहयोग के बिना सरकारी अधिकारियों का कार्य भी कठिन हो जाता है।
5. पंचायतें नागरिकों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग की शिक्षा देती हैं साथ ही उनमें नागरिक गुणों के विकास करने में भी मदद करती हैं।
6. ग्रामीण समाज इन संस्थाओं के माध्यम से शासन-सत्ता के बहुत करीब पहुँच जाता है। जनता व शासन में एक-दूसरे की कठिनाइयों को समझने की भावनाएँ पैदा होती हैं। इससे दोनों में परस्पर सहयोग बढ़ता है जो ग्रामीण/सामाजिक उत्थान के लिए बहुत ही आवश्यक है।

संक्षेप में पंचायतों का मूल उद्देश्य ग्रामीण समाज के विकास के प्रयासों और जनता के बीच तारतम्य स्थापित करना है। वस्तुतः पंचायतीराज की सफलता पर ही भारतीय ग्रामीण समाज का भविष्य निर्भर है।

पंचायतीराज का नया प्रतिमान : 73वां संविधान संशोधन– संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। संविधान में नया अध्याय-9 जोड़ा गया है। अध्याय-9 द्वारा संविधान में 16अनुच्छेद और एक अनुसूची-ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गई है। 25 अप्रैल, 1993 से 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1993 लागू किया गया। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. ग्रामसभा– ग्रामसभा गाँव के स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगी और ऐसे कार्यों को करेगी जो राज्य विधानमण्डल विधि बनाकर उपबंध करे।

2. पंचायतों का गठन– अनुच्छेद 243 ख में त्रिस्तरीय पंचायतीराज का प्रावधान है। प्रत्येक राज्य में ग्राम-स्तर, मध्यवर्ती-स्तर और जिला-स्तर पर पंचायतीराज संस्थाओं का गठन किया जायेगा, परन्तु उस राज्य में जिसकी जनसंख्या 20 लाख से अधिक नहीं हो, वहाँ मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन करना आवश्यक नहीं होगा।

3. पंचायतों की संरचना– पंचायतों के सभी स्थान पंचायत राज क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गये व्यक्तियों से भरे जायेंगे। सभी स्तर के पंचायतों के सभी सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्षतः तथा मध्यवर्ती एवं जिला-स्तर के पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से किया जाएगा।

4. पंचायतों में आरक्षण– पंचायत के सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के लिए उनको जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण प्रदान किया जाएगा। ऐसे स्थानों को प्रत्येक पंचायत में चक्रानुक्रम से आवंटित किया जाएगा। आरक्षित स्थानों में से एक-तिहाई स्थान (33 प्रतिशत) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित रहेगा।

5. पंचायतों का कार्यकाल– पंचायतीराज संस्थाओं का कार्यकाल 5 वर्ष का होगा। किसी पंचायत के गठन के लिए निर्वाचन 5 वर्ष की अवधि पूर्ण होने से पूर्व और विघटन की तिथि से 6माह की समाप्ति से पूर्व करा लिया जाएगा।

6. वित्त– पंचायतों की वित्तीय स्थिति के पुनर्निरीक्षण के लिए राज्य के राज्यपाल द्वारा एक वित्त आयोग का गठन किया जायेगा, जो पंचायतों की वित्तीय स्थिति में सुधार के उपाय, राज्य संचित निधि से पंचायतों को अनुदान एवं कर (Tax) निर्धारण की सिफारिश करेगा।

पंचायतों के कार्य– 11वीं अनुसूची में 29 विषय ऐसे हैं जिन पर पंचायतें विधि/कानून बनाकर इन कार्यों को कर सकेंगी, जैसे-कृषि, जल प्रबन्ध, भूमि सुधार, पशुपालन, मछली पालन, वनोद्योग, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवास, पेयजल, ईंधन, चारा, विद्युतीकरण, ऊर्जा, गरीबी उपशमन, शिक्षा, पुस्तकालय, बाजार व मेले, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास, समाज कल्याण, लोक वितरण प्रणाली इत्यादि।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देश में पंचायतीराज व्यवस्था की शुरुआत एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसका प्रभाव भारतीय ग्रामीण विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में देखा जा सकता है।

राजस्थान में पंचायतीराज– ग्रामीण सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु पंचायतीराज संस्थाएँ मील का पत्थर साबित हुईं। जनता की सहभागिता सुनिश्चित करने एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए पंचायतीराज की त्रिस्तरीय व्यवस्था शुरू की गई।

राजस्थान की विधानसभा में 2 सितम्बर, 1959 को पंचायतीराज अधिनियम पारित किया गया और इस नियम के प्रावधानों के आधार पर 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायतीराज का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा किया गया। इसके बाद 1959 में आन्ध्र प्रदेश में, 1960 में असम, तमिलनाडु व कर्नाटक, 1962 में महाराष्ट्र, 1963 में गुजरात तथा 1964 में पश्चिम बंगाल में विधानसभाओं द्वारा पंचायतीराज अधिनियम पारित करके पंचायतीराज व्यवस्था को

प्रारम्भ किया गया। इसका प्रभाव ग्रामीण समाज के विकास एवं क्रियाकलापों पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहा है।

अगस्त, 1997 में पंचायतीराज संस्थाओं को अधिकार सौंपने के मसले पर सम्पन्न हुए राज्य के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री भैरोंसिंह शेखावत ने संविधान के 73वें संशोधन पर पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहा कि सरपंच को पंचायत समिति का तथा प्रधान को जिला परिषद् का सदस्य बनाया जाना चाहिए। इससे ग्राम पंचायत, पंचायत समिति व जिला परिषद् में बेहतर सामंजस्य हो सकेगा। उनके अनुसार पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों के सदस्यों का सीधा चुनाव करने से जो एक खर्चीली व्यवस्था राज्य सरकारों पर लादी गई है, उसका अविलम्ब निराकरण किया जाना चाहिए।

राजस्थान में पंचायतीराज की त्रिस्तरीय व्यवस्था

पंचायतीराज का त्रिस्तरीय ढाँचा– 73वेंस ंविधानस ंशोधन अधिनियम प्रवर्तन के पश्चात् सभी राज्यों ने अपने अधिनियमों में संशोधन कर संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप नियम निर्धारित किये जिससे पूरे देश में पंचायतीराज व्यवस्था का नया ढाँचा सामने आया। राजस्थान में भी 1994 में पूर्व पंचायतीराज अधिनियमों में संशोधन कर नया पंचायतीराज अधिनियम, 1994 बनाया गया, जिसमें मूल रूप से त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था के अतिरिक्त एक और स्तर ग्रामसभा का सृजन किया गया। (1) जिला परिषद (2) पंचायत समिति (3) ग्राम पंचायत (4) ग्राम सभा।

उक्त चार स्तरों में से वर्तमान में 3 इकाइयाँ ही सक्रिय हैं। चौथी इकाई ग्राम सभा का अध्यक्ष भी ग्राम पंचायत का सरपंच होता है तथा गाँव के सभी वयस्क नागरिक जिनका नाम मतदाता सूची में है एवं ग्राम पंचायत के चयनित पंच इसके सदस्य होते हैं। ग्राम सभा की बैठकों में जिला कलेक्टर द्वारा नामित अधिकारी भी उपस्थित रहते हैं परन्तु वे विचार-विमर्श में भाग नहीं लेते हैं। चूँकि ग्राम सभा का अध्यक्ष भी सरपंच होता है, अत: हम यहाँ ग्राम पंचायत के गठन एवं कार्यों पर विशेष चर्चा करेंगे।

ग्राम पंचायत

भारत की त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था का धरातल स्तर ग्राम पंचायत के नाम से जाना जाता है। वास्तव में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का व्यावहारिक स्वरूप ग्राम पंचायत ही है। अत: इसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र में पंचायतों की संरचना एवं कार्यों में एकरूपता लाने का प्रयास किया गया। पंचायत की संरचना एवं कार्यों के निर्धारण के लिए राज्यों ने भी अपने-अपने अधिनियम में संशोधन किया है।

ग्राम पंचायत की संरचना– राजस्थान में नवीन पंचायतीराज अधिनियम, 1994 में पंचायत की संरचना के सम्बन्ध में प्रावधान किये गये, जिसमें 1999 एवं सन् 2000 में भी संशोधन किया गया। वर्तमान में पंचायत की संरचना निम्नानुसार है–

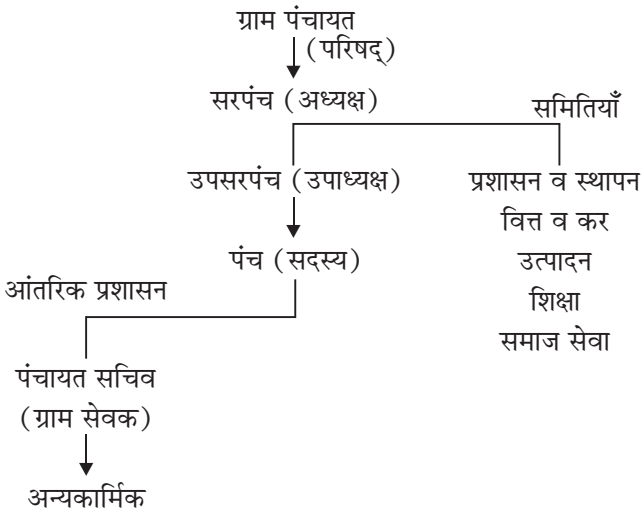

ग्राम पंचायत में निर्वाचित सदस्यों की एक परिषद् होती है। निर्वाचित परिषद् में एक अध्यक्ष होता है, जिसे सरपंच कहा जाता है। सरपंच का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा किया जाता है। सरपंच के चुनाव के साथ ही वार्ड पंचों का चुनाव भी प्रत्यक्ष रूप से जनता करती है। ग्राम पंचायत में एक उपसरपंच भी होता है, जिसका चुनाव निर्वाचित सदस्यों के द्वारा किया जाता है। पंच एवं सरपंच के निर्वाचन में संविधान के7 3वेंस ंशोधनके अ नुरूपअ नुसूचितज ाति,अ नुसूचितज नजाति, पिछड़े वर्ग एवं महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किये गये हैं। महिलाओं के लिए कुल निर्वाचित होने वाले स्थानों में एक-तिहाई स्थान और अन्य वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर चक्रानुक्रम में स्थान आरक्षित किये जाते हैं। राजस्थान में सन् 2010 में हुए पंचायतीराज संस्थाओं के आम चुनाव में समस्त वर्गों के सभी स्तर पर महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत पद आरक्षित किये गये। ग्राम पंचायत का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। सदस्यों की योग्यता के लिए भी अधिनियम में प्रावधान किया गया है।

सरपंच ग्राम पंचायत का अध्यक्ष होता है। वह ग्राम पंचायत के कार्य के संचालन का भी उत्तरदायी होता है। सरपंच की अनुपस्थिति में उपसरपंच, सरपंच के सभी शक्तियों एवं कार्यों का प्रयोग करता है।

सरपंच की शक्तियाँ– अधिनियम की धारा 32 के अनुसार सरपंच निम्न कार्यों को निष्पादित करता है–

1. पंचायत की बैठकों की अध्यक्षता करना।
2. पंचायत की बैठकों को आमंत्रित करना व संचालन करना।
3. पंचायत की प्रशासनिक व्यवस्था पर नियंत्रण करना।
4. पंचायत की वित्तीय व्यवस्था पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करना।
5. पंचायत के अभिलेखों की रक्षा करना।
6. पंचायत के कर्मचारियों पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करना।
7. ग्राम सभा की बैठकों को आमंत्रित करना एवं अध्यक्षता करना।
8. राज्य/केन्द्र सरकार द्वारा दिये गये अन्य समस्त कार्य जो अधिनियम के माध्यम से सौंपे गए हों।

ग्राम पंचायतों के कार्य– पंचायतीराज अधिनियम 1994 की प्रथम अनुसूची में ग्राम पंचायत के कार्यों के सम्बन्ध में प्रावधान किए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. सामान्य कार्य–

1. पंचायत क्षेत्र के विकास के लिए योजनाओं का क्रियान्वयन करना।
2. पंचायत का वार्षिक बजट तैयार करना।
3. सार्वजनिक सम्पत्तियों से अतिक्रमण हटाना।
4. प्राकृतिक आपदाओं में मदद पहुँचाना।
5. पंचायत क्षेत्र से सम्बन्धित सांख्यिकी का आकलन करना।

2. प्रशासनिक कार्य–

1. जनगणना करना।
2. आवास स्थलों का संख्यांकन करना।
3. कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु योजना बनाकर जिला परिषद को प्रस्तुत करना।
4. कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु वित्त का अनुमान तैयार करना।
5. सार्वजनिक स्थलों पर नियंत्रण।
6. जिन मामलों में पंचायत निर्णय नहीं कर सकती, उन्हें उच्च स्तर तक पहुँचाना।
7. पंचायत के अभिलेखों का संरक्षण करना।
8. जन्म, मृत्यु एवं विवाह का पंजीयन करना।

3. कृषि के क्षेत्र में कार्य–

1. कृषि विकास हेतु ग्रामीण नागरिकों को प्रोत्साहित करना।
2. बंजर भूमि विकास कर कृषि योग्य बनाना।
3. अधिक उपज प्राप्त करने हेतु उन्नत खाद एवं बीज की व्यवस्था करना।

4. लघु उद्योगों से सम्बन्धित कार्य–

1. लघु उद्योग जैसे–पशुपालन, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन, डेयरी इत्यादि की स्थापना के लिए नागरिकों को प्रोत्साहित करना।
2. लघु उद्योगों से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।

5. निर्माण सम्बन्धी कार्य–

1. ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों का निर्माण करना।
2. आवास स्थलों का निर्माण करना।
3. पीने के पानी की व्यवस्था, जलाशय एवं कुओं का निर्माण करना।
4. जलमार्ग एवं अन्य संचार साधनों की व्यवस्था करना।

6. शिक्षा सम्बन्धी कार्य–

1. ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना।
2. साक्षरता कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।
3. अनौपचारिक शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहित करना।

7. सामाजिक विकास सम्बन्धी कार्य–

1. कमजोर एवं पिछड़े वर्गों के कल्याण के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।
2. विशेष आवश्यकता वाले (दिव्यांग) के कल्याण हेतु कार्य करना।
3. महिला एवं बाल विकास के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।

उक्त कार्यों के अतिरिक्त अधिनियम में ग्रामीण लोगों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना, प्रदर्शनियों एवं मेलों का आयोजन करना, सिंचाई की व्यवस्था करना, सरकारी सम्पत्तियों के रखरखाव आदि का भी प्रावधान किया गया है।

ग्राम पंचायत की संरचना एवं कार्यों से यह स्पष्ट होता है कि ग्राम पंचायत पंचायतीराज की सबसे निचले स्तर की एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। ग्रामीण क्षेत्रों की जनता की अधिक से अधिक सहभागिता के कारण ग्रामीण विकास से सम्बन्धित सभी कार्यों का संचालन इसी संस्था के द्वारा किया जाता है। इस संस्था ने समाज के सभी वर्गों की विकास में सहभागिता को सुनिश्चित किया है। ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन में ग्राम पंचायत सबसे सशक्त उपकरण सिद्ध हो रहा है।

पंचायत समिति

त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण स्तर पंचायत समिति को माना गया है। पूरे जिले को कुछ खण्डों में विभाजित कर प्रत्येक खण्ड स्तर पर पंचायत समिति की स्थापना की गई। इस प्रकार की राजस्थान में कुल 237 पंचायत समितियाँ हैं, जो योजनाओं एवं कार्यक्रमों को अपने क्षेत्र में संचालित करती हैं।

पंचायत समिति की संरचना–नवीन पंचायतीराज अधिनियम, 1994 एवं संशोधन 1999, 2000 के अन्तर्गत पंचायत समिति की संरचना निम्नानुसार है–

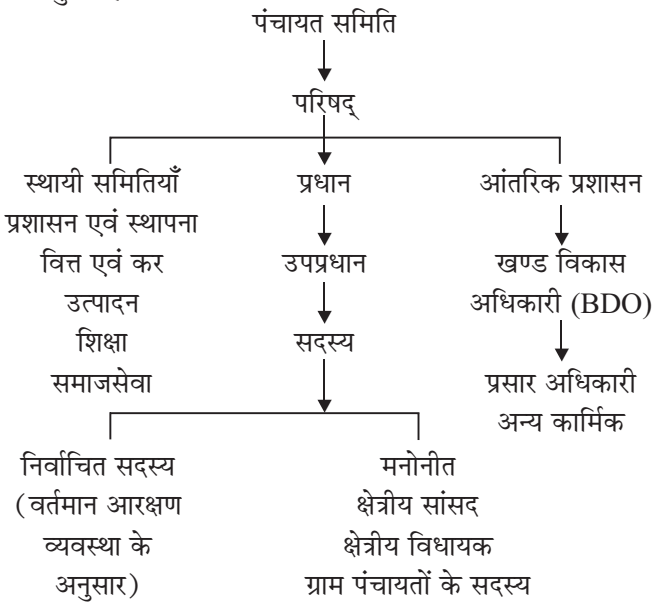

पंचायत समिति की संरचनात्मक व्यवस्था को निम्नानुसार समझा जा सकता है–

1. परिषद्– प्रत्येक पंचायत समिति में एक सर्वोच्च स्तर की परिषद् होती है, जिसमें दो प्रकार के सदस्य पाये जाते हैं–

(1) निर्वाचित सदस्य– अधिनियम के तहत पंचायत समिति

क्षेत्र को कुछ वार्डों में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक वार्ड से एक सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होता है। अधिनियम में यह प्रावधान किया गया है कि एक लाख तक की जनसंख्या वाले पंचायत समिति क्षेत्र में कुल 15 वार्ड बनाये जायेंगे। एक लाख से अधिक जनसंख्या होने पर प्रत्येक 15 हजार की जनसंख्या पर 2 सदस्यों की वृद्धि की जाएगी। पंचायत समिति परिषद् सदस्योंके च ुनावके ि लएअ नुसूचितज ाति,अ नुसूचितज नजातिक ी उसकी संख्या के अनुपात में तथा अन्य पिछड़े वर्ग को 21 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था को चक्रानुक्रम में लागू किया गया है। सन् 2010 से राजस्थान में महिलाओं को सभी पदों पर 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था लागू की गई है।

पंचायत समिति के कार्य संचालन के लिए जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों में से अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का निर्वाचन किया जाता है। अध्यक्ष को प्रधान तथा उपाध्यक्ष को उपप्रधान कहते हैं। इन पदों पर भी आरक्षण चक्रानुक्रम में किया जाता है। पंचायत समिति का प्रधान परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है एवं प्रशासनिक तन्त्र पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण भी करता है। प्रथम बैठक जिला कलेक्टर द्वारा आमंत्रित की जाती है। शेष सभी बैठकें जो माह में एक बार प्रधान द्वारा आयोजित की जाती हैं। एक-तिहाई सदस्यों के लिखित अनुरोध पर भी बैठक आयोजित की जा सकती है। बैठक का कोरम तब पूरा माना जाता है जब कुल सदस्यों के एक-तिहाई सदस्य बैठक में उपस्थित हों। बैठक में सभी निर्णय बहुमत के आधार पर लिए जाते हैं।

अधिनियम में प्रधान, उपप्रधान एवं सदस्यों को हटाने का भी प्रावधान है। कोई भी सदस्य स्वयं त्यागपत्र देकर हट सकता है। अविश्वास प्रस्ताव पास कर हटाया जा सकता है। राज्य सरकार को भी अधिकार है कि वह किसी भी सदस्य या पदाधिकारी को निलम्बित कर सकती है।

(2) मनोनीत सदस्य– अधिनियम में पंचायत समिति परिषद में कुछ मनोनीत सदस्यों का भी प्रावधान है। मनोनीत सदस्य बैठक में उपस्थित रहकर सुझाव तो दे सकते हैं परन्तु निर्णय लेते समय मत देने का अधिकार इनको नहीं होता है। इस श्रेणी के निम्न सदस्य हैं–

(1) पंचायत समिति क्षेत्र के सांसद

(2) पंचायत समिति क्षेत्र के विधानसभा सदस्य (विधायक)

(3) पंचायत समिति क्षेत्र की समस्त ग्राम पंचायतों के अध्यक्ष/सरपंच

पंचायत समिति की शक्तियाँ– पंचायत समिति की शक्तियों को 2 शीर्षकों में समझा जा सकता है–

1. सामान्यकालीन शक्तियाँ– अधिनियम के प्रावधानानुसार सामान्यकालीन परिस्थितियों में विकास अधिकारी इन कार्यों को निष्पादित करता है। जैसे–

1. पंचायत समिति एवं स्थायी समितियों की बैठकों के सम्बन्ध में सूचना जारी करना।
2. बैठक में उपस्थित रहकर कार्यवाहियों को अभिलेखित करना।
3. बैठक में विचार-विमर्श के समय अपना सुझाव प्रस्तुत करना।
4. प्रधान के निर्देश पर पंचायत समिति कोष से धन निकलवाना।
5. ग्राम सभा, वार्ड सभा की बैठक निर्धारित कर आयोजित करवाना।
6. पंचायत समिति के कार्यों का अनुमोदन करना।
7. पंचायत समिति के समस्त दस्तावेजों को प्रमाणित करना।
8. लेखा परीक्षण प्रतिवेदन की अनियमितताओं को दूर करवाना।
9. पंचायत समिति के धन सम्पत्ति के दुरुपयोग की सूचना उच्चाधिकारियों को देना।
10. विकास कार्यों हेतु स्वैच्छिक संगठनों को प्रेरित कर सहयोग प्राप्त करना।
11. राज्य सरकार एवं उच्चाधिकारियों द्वारा चाही गई सूचना उपलब्ध कराना।
12. पंचायत समिति के अधिकारियों, कर्मचारियों पर नियंत्रण करना।
13. पंचायत समिति की वित्तीय स्थिति का निरीक्षण करना।
14. पंचायत समिति क्षेत्र की ग्राम पंचायतों का अवलोकन।
15. अन्य कार्य जो राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा दिए जाते हैं।

2. आपातकालीन शक्तियाँ– आपातकालीन परिस्थितियों जैसे–बाढ़, आग, महामारी इत्यादि के समय पंचायत समिति कोष से धन व्यय कर सकता है। इसे जिला परिषद से स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है।

पंचायत समिति के कार्य– राजस्थान में पंचायत समिति निम्न कार्यों का निष्पादन करती है–

1. सामान्य प्रतिवेदन– जिला परिषद द्वारा निर्मित योजनाओं का क्रियान्वयन करना, प्रतिवेदन तैयार कर जिला परिषद को प्रस्तुत करना तथा ग्राम पंचायतों के कार्यों का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण करना।

2. कृषि सम्बन्धी कार्य– कृषि विकास हेतु उन्नत बीज, खाद, कृषि सामग्री की व्यवस्था करना एवं कृषकों के प्रशिक्षण एवं भ्रमण आयोजित करना।

3. भूमि सुधार सम्बन्धी कार्य– कृषिभ ूमिक ी मट्टीक ा परीक्षण एवं भूमि सुधार योजनाओं की क्रियान्विति करना।

4. सिंचाई– ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई हेतु तालाब, कुएं, बावड़ी इत्यादि का निर्माण करना।

5. औद्योगिक विकास– ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन, डेयरी, खादी जैसे लघु उद्योगों के विकास एवं प्रोत्साहन का कार्य करना।

6. सामान्य नागरिक सुविधाओं को उपलब्ध करवाना– सामान्य नागरिक सुविधाएँ जैसे आवास, पीने का पानी, सड़क, गली, नाली, जलमार्ग, संचार साधनों का निर्माण एवं रखरखाव करना।

7. सामाजिक विकास– समाज के पिछड़े एवं कमजोर वर्गों

जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, महिलाओं, बच्चों, अनाथों, दिव्यांगों के विकास हेतु विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन करना।

8. शिक्षा सम्बन्धी कार्य– राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारम्भिक स्तर तक की शिक्षा के विकास एवं प्रबन्धन का दायित्व भी पंचायत समितियों का ही है।

इसके अतिरिक्त पंचायत समितियाँ, सांस्कृतिक विकास, परिवार कल्याण एवं सांख्यिकी संकलन आदि कार्यों का भी निष्पादन करती है।

जिला परिषद

राजस्थानप ंचायतीराजअ धिनियम,1 994म ेंि जलाप रिषदके सम्बन्ध में प्रावधान किये गये हैं। संविधान संशोधन के माध्यम से जिला परिषद को केवल 'एक नीति निर्माण की इकाई' ही माना है। नीतियों के क्रियान्वयन का दायित्व जिला परिषद को नहीं दिया गया है। 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् सभी राज्यों के जिला परिषदों की संगठनात्मक व्यवस्था में एकरूपता लाई गई है जो निम्नानुसार है–

अर्थात् हम कह सकते हैं कि जिला परिषद में सर्वोच्च स्तर पर एक परिषद होती है जिसमें निम्नलिखित सदस्य होते हैं–

– निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित सदस्य

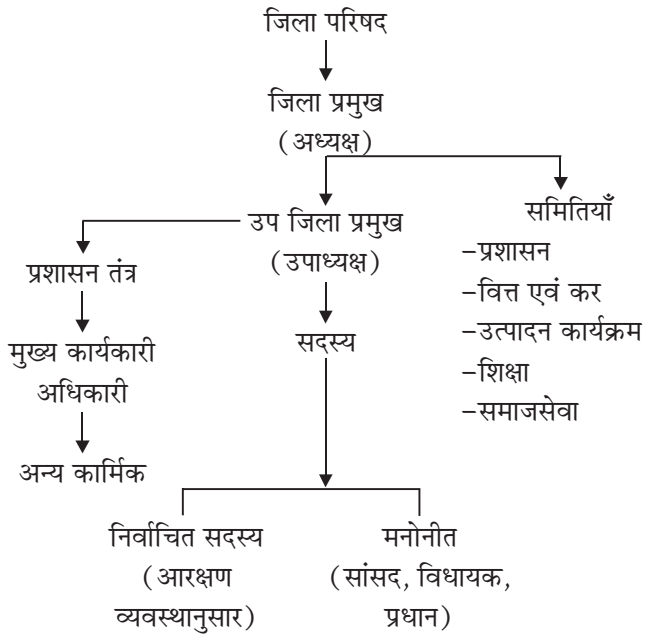

– जिला परिषद क्षेत्र के अन्तर्गत प्रतिनिधित्व करने वाले लोकसभा एवं राज्य विधानसभा के सभी सदस्य

– जिला परिषद क्षेत्र के अन्तर्गत निर्वाचकों के रूप में पंजीकृत राज्यसभा के सभी सदस्य

– जिला परिषद क्षेत्र के सभी पंचायत समितियों के प्रधान।

राज्य सरकार जिला परिषद के लिए निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या निर्धारित करती है। सामान्यतया 4 लाख की जनसंख्या वाले परिषद क्षेत्र में 17 निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था की जाती है। 4 लाख से अधिक जनसंख्या वाले जिले में 4 लाख से अधिक के प्रत्येक एक लाख से अधिक की जनसंख्या पर 2 सदस्यों की वृद्धि की जाती है।

निर्वाचन के लिए आरक्षण की व्यवस्था 73 संविधान संशोधन के अनुरूप ही है, जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग एवं महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं। महिलाओं के लिए कुल निर्वाचित होने वाले स्थानों के एक–तिहाई स्थान और अन्य वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर स्थान चक्रानुक्रम के आधार पर आरक्षितर् कएग एह ैं ।र ाजस्थानप ंचायतीराजअ ामच ुनाव2 010म ें पंचायतीराज की सभी संस्थाओं में 50 प्रतिशत पद सभी वर्गों के सभी स्तर पर महिलाओं हेतु आरक्षित किए गए।

परिषद का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित किया गया है। अधिनियम में प्रावधान किए गए योग्यताधारी सदस्य सीधे जनता के द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। ये निर्वाचित सदस्य परिषद् का निर्माण करते हैं। परिषद का एक अध्यक्ष एवं एक उपाध्यक्ष परिषद के निर्वाचित सदस्यों में से निर्वाचित सदस्यों द्वारा ही चुना जाता है। अध्यक्ष को जिला प्रमुख एवं उपाध्यक्ष को उप जिला प्रमुख कहा जाता है। जिला प्रमुख जिला परिषद का मुखिया होता है, जो जिला परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है तथा आन्तरिक प्रशासन पर भी नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण रखता है। जिला प्रमुख की अनुपस्थिति में उप जिला प्रमुख उनकी शक्तियों का प्रयोग करता है।

जिला प्रमुख की शक्तियाँ– नवीन पंचायतीराज अधिनियम 1994 में जिला प्रमुख की शक्तियों के सम्बन्ध में निम्न प्रावधान किए गए हैं–

1. जिला परिषद की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण रखना
2. जिला परिषद की बैठक आमंत्रित करना, अध्यक्षता करना एवं संचालन करना
3. प्राकृतिक आपदाओं के समय वित्तीय एवं प्रशासनिक स्वीकृति देना
4. जिला परिषद की वित्तीय प्रशासन को नियंत्रित एवं पर्यवेक्षित करना
5. विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने हेतु योजनाओं का निर्माण करना
6. जिले में ग्रामीण विकास की योजनाओं को संचालित करना
7. जिले की सभी पंचायतीराज संस्थाओं पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करना
8. अन्य कार्य जो समय–समय पर राज्य सरकार द्वारा दिए जाएँ।

अधिनियम में यह प्रावधान है कि जिला परिषद की बैठकें 3 माह में एक बार आयोजित की जाएँगी, जो जिला परिषद मुख्यालय पर होती हैं। निर्वाचन के पश्चात् प्रथम बैठक मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) द्वारा आयोजित की जाती हैं। शेष सभी बैठकें जिला प्रमुख आमंत्रित करते

हैं तथा उनकी अध्यक्षता एवं संचालन भी करते हैं। परिषद के एक-तिहाई सदस्यों के लिखित माँग के आधार पर जिला प्रमुख उचित समझे तो विशिष्ट बैठक को भी आमंत्रित कर सकता है। अधिनियम में जिला परिषद की बैठक के लिए कुल सदस्यों के एक-तिहाई सदस्य की उपस्थिति अनिवार्य है। अन्यथा बैठक को स्थगित कर आगामी तिथि में पुनः आयोजित की जाती है। इस बैठक में एक-तिहाई सदस्यों की उपस्थिति होने पर विचार नहीं किया जाता है। बैठक में जिला प्रमुख की अनुपस्थिति पर उप जिला प्रमुख द्वारा अध्यक्षता एवं संचालन किया जाता है। यदि दोनों ही अनुपस्थित हों तो बैठक में उपस्थित सदस्य अपने सदस्यों में से ही अध्यक्षता के लिए एक सदस्य का चुनाव करते हैं, जिसे हिन्दी पढ़ने-लिखने का ज्ञान होना आवश्यक है। बैठक में सभी निर्णय बहुमत के आधार पर लिए जाते हैं। अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार होता है। बैठक की सम्पूर्ण कार्यवाहियों का अभिलेखन एवं लिये गये निर्णयों को सम्बन्धित व्यक्ति अथवा संस्था तक पहुँचाने का दायित्व मुख्य कार्यकारी अधिकारी का होता है।

जिला परिषद के कार्य– 73वें संविधान संशोधन अधिनियम एवं राजस्थान नवीन पंचायतीराज अधिनियम में जिला परिषद को **नीति निर्माण करने वाली इकाई** माना है। अर्थात् जिला परिषद को क्रियान्वयन सम्बन्धी दायित्व नहीं दिये गये हैं। अतः जिला परिषद के कार्यों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ सकते हैं–

1. सामान्य कार्य– जिले के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए योजनाओं का निर्माण करना एवं उनका क्रियान्वयन सुनिश्चित करना।

2. सिंचाई कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई के पानी की व्यवस्था हेतु नीतियाँ एवं कार्यक्रम जिला परिषद द्वारा बनाये जाते हैं। नये एवं पुराने जलस्रोतों के विकास की योजनाएँ बनाना एवं उनके रखरखाव की नीति निर्धारण का कार्य करना।

3. कृषि कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि विकास हेतु जैसे–कृषि उत्पादन, कृषि उपकरण, कृषि पद्धति, कृषकों का प्रशिक्षण, भूमि सुधार, भूमि संरक्षण इत्यादि हेतु नीतियों का निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन पर पर्यवेक्षण रखना।

4. बागवानी सम्बन्धी कार्य– जिला परिषद द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में पार्क व उद्यान लगाने हेतु समय-समय पर नीतियों का निर्माण किया जाता है। इस हेतु वन विभाग एवं अन्य संस्थाओं के साथ समन्वयन स्थापित करना।

5. सांख्यिकी सम्बन्धी कार्य– जिले में पंचायतीराज संस्थाओं से सूचनाएँ एवं आँकड़े एकत्रित कर उन्हें प्रकाशित करवाना।

6. ग्रामीण विद्युतीकरण– ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण हेतु राज्य सरकार के ऊर्जा विभाग द्वारा ग्रामीण विद्युतीकरण नामक योजना का क्रियान्वयन कर मूल्यांकन करना।

7. भूमि सम्बन्धी कार्य– कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में मृदा परीक्षण, मृदा संरक्षण एवं बंजर भूमि सुधार के कार्यक्रमों का संचालन करवाना।

8. प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करना– ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास हेतु नीति निर्धारण करना एवं उसी के अनुरूप प्रशिक्षण की योजना तैयार कर प्रशिक्षण दिलवाना।

9. निर्माण सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों, भवनों के निर्माण एवं रखरखाव सम्बन्धी योजनाएँ तैयार करना, स्वीकृति देना एवं पर्यवेक्षण का कार्य करना।

10. स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराने हेतु योजनाओं का निर्माण करना तथा केन्द्र व राज्य सरकारों के स्वास्थ्य कार्यक्रमों को जिले में क्रियान्वित करवाना।

11. आवास सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में आवास सुविधाओं के विकास हेतु नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन करवाना।

12. शिक्षा सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारम्भिक शिक्षा के विकास के लिए कार्यरत शिक्षण संस्थाओं के पर्यवेक्षण का कार्य करना।

13. समाज कल्याण सम्बन्धी कार्य– समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का मूल्यांकन करना।

14. समाज सुधार सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में समाज सुधार के लिए की जाने वाली क्रियाओं पर नियंत्रण रखना तथा उनके क्रियान्वयन के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

15. दिशा निर्देश– आपातकालीन परिस्थितियों में सहायता कार्य के लिए जिले की पंचायतीराज संस्थाओं हेतु आवश्यक दिशा निर्देश जारी करना।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जिला परिषद पंचायतीराज की सर्वोच्च इकाई है जो कि ग्रामीण प्रशासन की विभिन्न नीतियों व योजनाओं के निर्माण व उनके क्रियान्वयन पर पर्यवेक्षण रखती है।

ग्रामीण विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में पंचायतीराज की भूमिका– 1993 से लेकर आज तक लगभग 22 वर्षों के कार्यकाल में पंचायतीराज ने निश्चित तौर पर कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को हासिल किया है और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के नये आयाम को प्रस्तुत कर भारत के ग्रामीण, सामाजिक, आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका दर्ज की है। जैसे–

1. पंचायतीराज ने सत्ता व शक्ति का विकेन्द्रीकरण ग्रामीण स्तर तक विस्तृत करके लोकतंत्र को मजबूत किया है।
2. पंचायतीराज के माध्यम से परम्परागत ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन आया है और ऊँची जातियों का एकाधिकार कमजोर हुआ है। जाति, धर्म एवं परम्परागत भावनाओं में समानता की दिशा में परिवर्तनस म्भवह ुआह ै ि नचलेस् तरक ीज ातियाँस ंख्यात्मक शक्ति के आधार पर प्रभुजाति को चुनौती दे रही हैं और अपनी परिस्थिति सुधार की दिशा में क्रियाशील हैं।
3. पंचायतीराज ने महिलाओं के लिए एक-तिहाई (33 प्रतिशत)

आरक्षण प्रदान करके महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहित किया है। परिणामस्वरूप कर्नाटक में 46प्रतिशत तथा पश्चिम बंगाल में 35 प्रतिशत महिलाएँ इन पदों पर आसीन हैं।

4. पंचायतीराज के कारण आज गाँवों में नये प्रतिमान का उदय हुआ है और इस क्षेत्र में अधिक आयु, धर्म और जाति की उच्चता का महत्त्व कम हो रहा है।
5. पंचायतीराज व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि ग्रामीण आर्थिक विकास एवं स्रोतों का समुचित उपयोग है। जहाँ श्रमदान औरस हकारिताके म ाध्यमस`अ ार्थिकि वकासक ेस ामूहिक भावना को भी प्रोत्साहन मिल रहा है।
6. ग्रामीण भारत में राजनैतिक जागरूकता को उत्पन्न करके लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को सफल बनाने और लोकतंत्र को मजबूत करने में भी पंचायतीराज संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है।
7. पंचायतीराज के माध्यम से विकास कार्यों में अधिकतम जन हिस्सेदारी सुनिश्चित की जा रही है।

बहुत कुछ उपलब्धियों के बाद भी पंचायतीराज संस्थाएँ ग्रामीण जनता में नई आशा एवं विश्वास पैदा करने में असफल रही हैं। वस्तुत: जब तक ग्रामीण जनता में चेतना नहीं आती, ये संस्थाएँ सफल नहीं हो सकतीं। इसका तात्पर्य ये बिल्कुल नहीं है कि पंचायतीराज संस्थाएँ असफल हो गई हैं। कुछ राज्यों तथा कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में इन संस्थाओं ने सराहनीय कार्य किया है। यह कार्य मुख्यत: ग्रामीण जनसुविधाओं के सम्बन्ध में हुआ है। परन्तु कुछ समस्याएँ भी हैं, जिनका निराकरण करना आवश्यक है।

1. सत्ता का विकेन्द्रीकरण– राज्य सरकारें पंचायतीराज संस्थाओं को अपने आदेशों की पालना करने का एजेन्ट मात्र न समझें इसके लिए नौकरशाही की मनोवृत्ति में परिवर्तन की आवश्यकता है, तभी पंचायतीराज संस्थाएँ स्वायत्त शासन की शक्तिशाली इकाइयाँ बन सकेंगी।

2. अशिक्षा व निर्धनता की समस्या– ग्रामीणों में अशिक्षा एवं निर्धनता के कारण ग्रामीण नेतृत्व का विकास नहीं हो रहा है। वे संकीर्ण दायरे से ऊपर नहीं उठ रहे हैं।

3. दलगत राजनीति– पंचायतीराज की सफलता में सबसे बड़ी बाधा दलगत राजनीति है। पंचायतें राजनीति का अखाड़ा बन रही हैं। छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़े हुआ करते हैं, जिससे समय नष्ट होता है। अत: राजनीतिक दलों को पंचायत चुनाव में अपना हस्तक्षेप बन्द करना चाहिए।

4. धन की समस्या–पंचायतीराज संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत नहीं दिए गए हैं। परिणामत: संस्थाओं को शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है।

5. राजनीतिक जागरूकता में कमी– ग्रामीण नागरिकों में राजनीतिक जागरूकता की कमी है। उनका अधिकांश समय जीवन-यापन एवं परिवार के पालन-पोषण पर ही खर्च हो जाता है।

6. विकास कार्यों की उपेक्षा–शासकीय अधिकारियों एवं जनप्रतिनिधियों के सहयोग के अभाव में विकास कार्यों की लगातार उपेक्षा हो रही है।

भारत के गाँव आर्थिक समृद्धि का प्रतीक हैं और गाँवों का सर्वांगीण विकास पंचायतीराज संस्थाओं की सफलता के द्वारा ही सम्भव है। पंचायतीराज संस्थाओं की सफलता के लिए निम्न सुधारात्मक कार्य किया जाना चाहिए–

1. पंचायतीराज संस्थाओं में व्याप्त गुटबंदी को समाप्त करना।
2. पंचायत चुनाव में मतदान अनिवार्य करना।
3. पंचायत में विकास कार्य हेतु वित्तीय व्यवस्था करना।
4. शासकीय अधिकारियों एवं जनप्रतिनिधियों को मार्गदर्शन के रूप में सहयोग करना।
5. निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देना।

पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा ग्रामीण समाज में परिवर्तन–पंचायतीराज संस्थाओं के अब भारतीय संविधान का हिस्सा बन जाने से अब कोई भी पंचायतों को दिये गये अधिकारों, दायित्वों व वित्तीय साधनों को छीन नहीं सकता। 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् पंचायतीराज संस्थाओं में एकरूपता लाने का प्रयास किया गया, जिसका ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन में निम्न योगदान रहा है–

1. ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में सत्ता का विकेन्द्रीकरण हुआ है।
2. सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा का बड़ा योगदान है। पंचायतीराज व्यवस्था लागू होने के पश्चात् दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों तक शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ है।
3. पंचायतीराज संस्थाओं में समाज के कमजोर वर्गों यथा-अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के अनुपात में हिस्सेदारी बढ़ी है। अनिवार्य एवं चक्रिक आरक्षण से ग्रामीण समाज में परिवर्तन की स्थिति स्पष्ट दिखाई दे रही है।
4. पंचायतीराज संस्थाओं में एक-तिहाई (33 प्रतिशत) महिला आरक्षण लागू होने से महिलाओं की संख्या बढ़ी है। जो अनुभव के आधार पर अपनी समस्याओं का निराकरण करती है। समाज में महिलाओं की स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई दे रहा है।
5. पंचायतीराज निचले स्तर पर लोकतंत्र का कारगर उपकरण साबित हुआ है।
6. पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा सार्वजनिक स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिये जाने के कारण बीमारियों में कमी आई है। ग्रामीण समाज में स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ी है। जीवनरक्षक औषधियाँ एवं प्राथमिक उपचार गाँव में उपलब्ध हैं। महिलाएँ प्रसव के समय स्वास्थ्य केन्द्रों का उपयोग कर रही हैं। बच्चों के टीकाकरण पर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। परिणामस्वरूप बाल एवं मातृ मृत्युदर में कमी आई है। स्वास्थ्य सुविधाओं के कारण औसत आयु में भी वृद्धि हुई है।

7. अस्पृश्यता, छूआछूत की भावना में कमी आई है।
8. ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक प्रकाश व्यवस्था, स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराना, गली-नालियों का पक्का निर्माण, स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, कृषि में विकास कार्यक्रम, आपदा प्रबन्धन, पशुधन संरक्षण इत्यादि क्षेत्रों में विकास होने के कारण सामाजिक वातावरण में अभूतपूर्व परिवर्तन आ रहा है।
9. भूजल संरक्षण, ग्रामीण विद्युतीकरण एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जाने के कारण ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार हो रहा है।
10. ग्रामीण क्षेत्रों के नागरिक अपने अधिकारों की चर्चा एवं माँग करने लगे हैं क्योंकि पंचायतीराज ने सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया है।

अन्तम ंह मक हस कतेह ंि कग ामीणस माजम ंप रिवर्तनके उपकरणके रू पम ंप ंचायतीराजस ंस्थाओंक ाक ारगरए वंम हत्त्वपूर्ण योगदान है।

राजनैतिक दल

प्रत्येक लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था में राजनीतिक दल अपरिहार्य है। सामाजिक व्यवस्था में एक राजनीतिक दल विचारों, अभिमतों तथा पद्धतियों के वाहक के रूप में कार्य करते हैं। राजनीतिक दल, समाज व सरकार के मध्य तथा मतदाता और प्रतिनिधात्मक संस्थाओं के बीच कड़ी का काम करते हैं। वास्तव में एक सफल लोकतन्त्र एवं सामाजिक व्यवस्था को अपने पोषण के लिए एक स्वस्थ दलीय व्यवस्था की आवश्यकता होती है। राजनीतिक दल सामाजिक परिवर्तन के ऐसे उपकरण हैं, जिनके माध्यम से नागरिक उन प्रतिनधियों को चुनते हैं जो सरकार बनाते हैं और अपने नीतियों और निर्णयों को लागू कराने का प्रयास करते हैं, जिसका यथार्थ प्रभाव समाज पर पड़ता है।

राजनीतिक दल का अर्थ– किसी भी देश में हजारों लोग देश की समस्याओं पर सोचते हैं, चिंतन व मंथन करते हैं। जब उनके विचारों व दृष्टिकोणों को दलीय आवरण द्वारा क्रमबद्ध व्यवस्थित किया जाता है तो राजनीतिक दल बनते हैं। राजनीतिक दल राजनीतिक प्रक्रिया को जोड़ने, सरल करने तथा स्थिर बनाने का कार्य करते हैं।

''एक स्वतंत्र समाज में राजनीतिक दल नागरिकों के उस व्यवस्थित समुदाय को कहते हैं जो शासन तंत्र को नियंत्रित करना चाहता है और उनके लिए जन सहमति में भाग लेकर अपने कुछ सदस्यों को सरकारी पदों पर भेजने का प्रयास करता है।''

''राजनीतिक दल नागरिकों के उस संगठित समुदाय को कहते हैं जिनके सदस्य समान राजनीतिक विचार रखते हैं और जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हुए शासन को अपने हाथ में रखने की चेष्टा करते हैं।''

मानव जाति ने अपने आपको समूह व इससे बड़े रूपों में संगठित किया है। राजनीतिक दल ऐसे ही मानव संगठनों में से एक है। आधुनिक युग में आदर्श सरकार को किसी न किसी प्रतिनिधात्मक संस्था के माध्यम से चलाया जाता है। इसलिए सभी प्रतिनिधात्मक संस्थाओं और सरकारों के लिए राजनीतिक दलों का होना आवश्यक भी है। राजनीतिक दल लोगों की एक संगठित संस्था है, जिनके देश व समाज की राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में सर्वमान्य सिद्धांत व लक्ष्य होते हैं। राजनीतिक दलों का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करना एवं उसे बनाये रखना होता है। सरकार चलाने वाले राजनीतिक दल को शासक दल कहते हैं। एक संयुक्त सरकार में कार्यों, विशिष्ट मुद्दों पर आलोचना व विश्लेषण करने वाले राजनीतिक दल को विपक्षी दल कहते हैं। एक राजनीतिक दल में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए–

1. यह औपचारिक सदस्यता वाली लोगों की एक संगठित संस्था होनी चाहिए।
2. इसकी स्पष्ट नीतियाँ और कार्यक्रम होने चाहिए
3. इसके सदस्यों को इनके सिद्धान्तों, नीतियों एवं कार्यक्रमों से सहमत होना चाहिए।
4. इसका लक्ष्य लोकतान्त्रिक तरीके से सत्ता प्राप्त करना होना चाहिए।
5. इसका स्पष्ट व स्वीकार्य नेतृत्व होना चाहिए।
6. इसको विस्तृत मुद्दों व व्यापक सरकारी क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।
7. इसको किसी वर्ग, जाति, धर्म, सम्प्रदाय के हित की अपेक्षा राष्ट्र हित व राष्ट्र गौरव की अभिवृद्धि हेतु चेष्टा करनी चाहिए।

राजनीतिक दलों के गठन/उत्पत्ति के आधार निम्नलिखित हैं–

1. मनोवैज्ञानिक– समान विचार वाले व्यक्ति राजनीतिक कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से विभिन्न दलों में संगठित हो जाते हैं। इस तरह समाज में चार प्रकार की सोच वाले व्यक्ति पाये जाते हैं। **पहला** वे जो प्राचीन संस्थाओं एवं रीति रिवाजों में वापस लौटना चाहते हैं। उन्हें प्रतिक्रियावादी कहते हैं। **दूसरा** वे जो वर्तमान में किसी तरह का परिवर्तन करना नहीं चाहते हैं। उन्हें अनुदारवादी कहते हैं। **तीसरा** वे जो वर्तमान परिस्थितियों में सुधार करना चाहते हैं। उन्हें उदारवादी कहते हैं और **चौथा** वे व्यक्ति जो वर्तमान संस्थाओं का उन्मूलन करना चाहते हैं। उन्हें उग्रवादी कहते हैं। इस प्रकार जैसे-जैसे लोगों की सोच व स्वभाव होगा वैसे-वैसे प्रतिक्रियावादी, अनुदारवादी, उदारवादी तथा उग्रवादी राजनीतिक दल बन जायेंगे।

2. वातावरण का प्रभाव– बालक जिस प्रकार के सामाजिक वातावरण में रहता है, उसका व्यापक प्रभाव उसकी सोच व स्वभाव पर पड़ता है तथा आगे चलकर वह उसी राजनीतिक दल का अनुयायी बन जाता है।

3. धार्मिक आधार– समाज में कुछ लोगों का लक्ष्य अपने धर्म के अनुयायियों की रक्षा करना होता है। उसी के आधार पर वे राजनीतिक दल बना लेते हैं। भारत में 'मुस्लिम लीग, जमात-ए-इस्लामी, अकाली दल, हिन्दू महासभा' का निर्माण इसी आधार पर हुआ।

4. आर्थिक कारण–एक राजनीतिक दल राष्ट्रीय महत्व तभी प्राप्त कर सकता है जब उसके कोई आर्थिक कार्यक्रम हों। बिना आर्थिक कार्यक्रम के कोई भी राजनीतिक दल अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता। शिक्षित जनता एवं समाज पर आर्थिक नीतियों का व्यापक प्रभाव पड़ता है।

5. नेतृत्व– प्रायः राजनीतिक दल अपने उच्चतम नेता के व्यक्तित्व की छाया होते हैं। वह जिन आदर्शों को आगे बढ़ाना चाहता है, उसके अनुयायी बिना सोचे समझे उसी सोच में ढलते जाते हैं।

6. विचारधारा– एक राजनीतिक आन्दोलन को जीवित रखने के लिए विचारधारा का होना अत्यावश्यक है। विचारधारा की अनुपस्थिति में आन्दोलनअ न्धकारत थाअ निश्चिततामें भ टकज ताहै स ामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विचारधारा में आम सहमति दल के सदस्यों को आपस में जोड़े रखती है तथा दल मजबूत बना रहता है।

7. क्षेत्रीयता– क्षेत्रीय समानता के आधार पर भी कई जगह पर राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ है। जिन्होंने विशिष्ट क्षेत्र की समान समस्याओं को मुद्दा बनाकर जनमत समर्थन का प्रयास किया है। (झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, तेलंगाना राष्ट्र समिति आदि)

8. भाषायी आधार पर– विभिन्न राज्यों में कई क्षेत्रीय दलों के निर्माण में भाषायी आधार भी महत्व रहे हैं, जिसके आधार पर किसी भाषा विशेष के लोगों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। (अकाली दल, डीएमके, एआईडीएमके, तृणमूल कांग्रेस)

उपर्युक्त तत्त्व निश्चित तौर पर भारत के राजनीतिक दलों के सामाजिक आधार के रूप में सक्रिय रहे हैं। परन्तु इसमें से जाति, धर्म, क्षेत्र की महत्ता वर्तमान राजनीति में अधिक बढ़ गई है और इन आधारों पर निर्मित बहुदलीयता भी बढ़ी है। यद्यपि वर्तमान भारत में राजनीतिक दलों के ये सामाजिक आधार जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, और सम्प्रदायवाद जैसी समस्याओं को भी उत्पन्न करने में सहायक रहे हैं और राष्ट्रीय विकास के मार्ग को भी अवरुद्ध किया है। तथापि इसका दूसरा पक्ष यह है कि ये आधार एक लम्बे समय से उपेक्षित रहे जातियों, क्षेत्रों तथा इनके संदर्भ में हुए असंतुलित विकास को दूर करने और अपने धार्मिक और क्षेत्रीय हितों को सुनिश्चित करके लोकतन्त्र को मजबूत करने में भी सहायक रहे हैं।

राजनीतिक दलों के कार्य– लोकतंत्रीय सामाजिक व्यवस्था में राजनीतिक दल अपरिहार्य हैं। राजनीतिक दल जो कार्य करते हैं, वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मेरियम के अनुसार इनके पांच प्रमुख कार्य हैं–(1) पदाधिकारियों का चुनाव करना, (2) नीति निर्धारण, (3) शासन का संचालन तथा उसकी रचनात्मक आलोचना, (4) राजनीतिक प्रचार व शिक्षण, (5) व्यक्ति व शासन के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना करना। उक्त के आधार पर राजनीतिक दलों के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. सार्वजनिक नीतियों का निर्माण– राजनीति दल जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए अपनी नीतियों व योजनाओं का जोरदार प्रचार करते हैं। वे राजनीति, आर्थिक व सामाजिक समस्याओं के विभिन्न पहलुओं से जनता को परिचित कराते हैं तथा भ्रान्तिपूर्ण वातावरण में समस्याओं का चयन करके वरीयता के आधार पर जनता की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करते है, जिसके आधार पर सार्वजनिक नीतियों का निर्धारण होता है।

2. शासन का संचालन– राजनीतिक दल चुनावों में बहुमत प्राप्त करके सरकार का निर्माण करते हैं तथा विभिन्न विधियों से अपने चुनावी घोषणा पत्र के वायदों को पूरा करने का प्रयास करते हैं।

3. शासन की आलोचना–निर्वाचन में बहुमत न प्राप्त करने वाले दल प्रतिपक्ष के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। शासन को सचेत रखते हैं। सरकार की रचनात्मक आलोचना कर वैकल्पिक नीतियाँ प्रस्तुत करते हैं। विपक्षी दल शासन की कमजोरियों को जनता के सामने रखकर उनके विरुद्ध लोकमत तैयार करते हैं।

4. चुनावों का संचालन–राजनीतिक दलों से ही चुनावों की सार्थकता प्रकट होती है। वे चुनाव के समय अपने घोषणा पत्र तैयार करते हैं। उनका प्रचार करते हैं। अपने प्रत्याशी खड़ा करते हैं तथा हर तरह से चुनाव जीतने का प्रयत्न करते हैं।

5. लोकमत का निर्माण– शासित व्यक्तियों की सहमति से सत्ता को प्राधिकार अर्जित करना है, शासन की नीतियों पर लोकमत प्राप्त करना है तो राजनीतिक दल अपरिहार्य है। इनकी अनुपस्थिति में जनसमुदाय एक दिशाहीन भीड़ के अतिरिक्त कुछ नहीं होगी। इसलिए लोकमत निर्माण में राजनीतिक दलों का बड़ा योगदान है।

6. शासन व जनता के मध्य, मध्यस्थ का कार्य–राजनीतिक दल जनता की आकांक्षाओं व समस्याओं को सरकार के सामने रखते हैं तथास रकारक ीि स्थतिसे ज नताक ोअ वगतक रातेहैं इ सप्रकार राजनीतिक दल जनता व सरकार के मध्य, मध्यस्थता का कार्य करते हैं।

7. सामाजिक एवं साँस्कृतिक कार्य– अधिकाँश राजनीतिक दल जनता के सामाजिक और साँस्कृतिक जीवन को उन्नत करने का भी कार्यक रतेहैं स्व ाधीनताके प श्चात्ग्रामीणस ामाजिकउ त्थानहे तु शासन द्वारा अनेक कल्याणकारी योजनाओं की शुरुआत की गई।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ग्रामीण सामाजिक उत्थान में राजनीतिक दल सक्रिय भूमिका अदा करते हैं।

भारत में राजनीतिक दलों के सामाजिक आधार का भारतीय लोकतन्त्र पर प्रभाव–भारत में राजनीतिक दलों के इन सामाजिक आधारों ने भारतीय लोकतंत्र को कई रूपों में प्रभावित किया है, जैसे–

1. आर्थिक आधार पर गठित राजनीतिक दलों ने लोकतन्त्र को धनी वर्गों की कठपुतली नहीं बनने दिया और गरीबों के हितों को लामबन्द कर उनकी सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित किया और समतामूलक समाज के निर्माण में सकारात्मक योगदान दिया। परन्तु दूसरी तरफ इसने वर्गीय द्वेष, तनाव एवं संघर्ष को बढ़ाकर भारत की राष्ट्रीय एकता और लोकतन्त्र के समक्ष चुनौती को भी पेश किया है।

2. राजनीतिक दलों ने जाति आधारित राजनीति के माध्यम से भारत जैसे जाति-प्रधान देश में निम्न जातियों में राजनीतिक समाजीकरण एवं राजनीतिक जागरूकता पैदा करके उनको मतदान हेतु प्रेरित किया। उनकी सत्ता में सहभागिता को सुनिश्चित किया है, लोक निर्णयों में उनके हितों को शामिल कराया है और परम्परागत सामाजिक असमानता को कमजोर करके लोकतन्त्र को मजबूत किया है। परन्तु दूसरी ओर इसमें समाज को विभिन्न जातीय समूहों में विभक्त कर दिया है, जिसका परिणाम जातीय तनाव एवं जातीय संघर्ष के रूप में सामने आया है। इसने जातिवाद का प्रयोग करके योग्यता को हतोत्साहित किया है और सत्ताधारी समूहों के लोक निर्णयों को उनके जातीय समूहों के हितों के पक्ष में उन्मुख करके लोकतन्त्र को कमजोर किया है।
3. धर्म के आधार पर गठित राजनीतिक दलों ने सरकारी निर्णय प्रक्रिया को धार्मिक आधार पर संतुलन बनाये रखने हेतु विवश किया है, जिससे लोकतन्त्र मजबूत हुआ है, परन्तु दूसरी ओर इसने भारत के धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक चरित्र को कमजोर भी किया है।
4. क्षेत्रीय एवं भाषायी आधार पर गठित राजनीतिक दलों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रीय एवं भाषायी समूहों में सत्ता का विकेन्द्रीकरण करके, लोक नीतियों में उनके हितों को शामिल करके संतुलित विकासक ेस ंभवब नाकरभ ारतके ि वविधताम ेंए कताअ ौर लोकतन्त्र को मजबूत किया है। परन्तु दूसरी ओर इसने देश को क्षेत्रीय एवं भाषायी समूहों में विभाजित करके भाषावाद व क्षेत्रवाद जैसी समस्याओं को प्रोत्साहित भी किया है। सत्ताधारी दलों ने लोक नीतियों के निर्माण तथा विकास कार्यों के क्रियान्वयन के किसी क्षेत्रीय भाषायी हितों को विशेष प्राथमिकता प्रदान करने को प्रेरित करके लोकतन्त्र को कमजोर भी किया है।

अत: ये स्पष्ट है कि भारत में राजनैतिक दलों के सामाजिक आधारों ने भारतीय लोकतन्त्र को नकारात्मक तथा सकारात्मक दोनों रूपों में प्रभावित किया है। नकारात्मक प्रभावों का आधारभूत कारण राजनेताओं तथा राजनीतिक दलों द्वारा इन सामाजिक विशिष्टताओं का प्रयोग अपने संकुचित एवं स्वार्थपूर्ण हितों की पूर्ति रहा है। वर्तमान में भारतीय परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक दलों के विभिन्न सामाजिक आधारों के बीच दूरियां कम हुई हैं और इनमें सहमति बढ़ती जा रही है। जैसे नई आर्थिक नीति पर पिछड़ी जातियों के राजनीतिक व सामाजिक दावे पर, देश के शासन में प्रान्तीय दलों की भूमिका पर और विचारधारा की जगह कार्य सिद्धि पर विभिन्न राजनीत दल एक दूसरे के निकट आये हैं। ये नये बदलाव भी राजनीति दलों के सामाजिक आधारों पर लोकतन्त्र पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को सीमित कर रहे हैं।

भारतीय राजनीतिक दलों की समकालीन चुनौतियाँ–राजनीतिक दल लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का आधार होता है, जिसकी दक्ष क्रियाशीलता लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत बनाती है और जिसका आधार इसको कमजोर करती है। वर्तमान भारत में राजनीतिक दल कई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। जैसे–

1. राजनीतिक दलों के भी कमजोर आंतरिक लोकतन्त्र ने दलों में किसी विशेष व्यक्ति को सर्वसत्ताधारी बना दिया है।
2. दलों में परिवारवाद एवं वंशवाद के प्रभाव ने कुशलता के महत्व की अनदेखी कर दी है।
3. राजनीतिक दलों में धन के बढ़ते महत्व ने आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों की भागीदारी सीमित कर दी है।
4. राजनीतिक दलों में अपराधीकरण के परिणामस्वरूप योग्य व ईमानदार लोगों की राजनीति के प्रति उदासीनता बढ़ी है।
5. राजनीतिक दलों के बीच विकल्पहीनता की स्थिति अर्थात् विभिन्न दलों की नीतियों एवं कार्यक्रमों में घटते अन्तर ने मतदाताओं को इन दलों के संदर्भ में भ्रमित किया है।

भारतीय राजनीतिक दलों को इन समकालीन चुनौतियों का सामना करने हेतु कई प्रयास किये गये जैसे दलबदल विधेयक द्वारा कानून बनाकर नेताओं द्वारा दल परिवर्तन पर रोक लगाई गई। नेताओं की सम्पत्ति का ब्यौरा प्रस्तुत करने की बाध्यता द्वारा भ्रष्टाचार पर रोक लगाने का प्रयास किया गया। चुनाव आयोग द्वारा सभी राजनीतिक दलों के लिए चुनाव आचार संहिता का पालन करना और आयकर रिटर्न भरना आवश्यक कर दिया गया है।

परन्तु इन प्रयासों के बावजूद आज लोकतांत्रिक व्यवस्था हेतु इन राजनैतिक दलों के बाध्यता से सम्बन्धित कानून अधिक प्रभावी नहीं हैं। आज भी राजनीतिक दलों में पूरी तरह से लोकतंत्र कायम नहीं हो रहा है। प्रत्येक राजनीतिक दल में कोई व्यक्ति या समूह सर्वसत्ताधारी बना हुआ है। वर्तमान राजनीतिक दलों पर परिवार एवं वंशवाद की छाया स्पष्ट दिखाई दे रही है। इन समस्याओं के समाधान हेतु निम्न सुझावों पर अमल किया जा सकता है/किया जाना चाहिए–

1. राजनीतिकद लोंम ेंअ न्तरिकल ोकतंत्रक ेस् थापनाके ि लए कानून का निर्माण किया जाना चाहिए।
2. चुनाव में होने वाले व्यय की एक निश्चित सीमा बनाई जानी चाहिए तथा चुनाव का खर्च सरकार द्वारा वहन किया जाना चाहिए।
3. राजनीति में अपराधीकरण को रोकने हेतु कठोर कानून बनाया जाना चाहिए।
4. प्रत्येकर ाजनीतिकद लके द्व ाराम हिलाओंक ेिए क ि नश्चित अनुपात में टिकट देना अनिवार्य कर दिया जाये। इस दिशा में कार्य न करने वाले दल की मान्यता रद्द करने की कार्यवाही की जानी चाहिए।
5. राजनीतिक दलों पर जनता के अंकुश को मजबूत करने का प्रयास किया जाना चाहिए और चुनाव के साथ वापस बुलाने के अधिकार को भी मान्यता देनी चाहिए।

6. सुधार की इच्छा रखने वाले लोगों को स्वयं राजनीतिक दल में शामिल होकर सक्रिय प्रयास करने चाहिए।

इस प्रकार सकारात्मक एवं कुछ नकारात्मक प्रभावों के बीच राजनीतिक दलों की उपस्थिति अनिवार्य है। भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन में इनका बड़ा योगदान है, परन्तु विभिन्न विचारधाराओं एवं निजी स्वार्थों के आधार पर गठित राजनीतिक दलों की अपेक्षा देश में सुस्पष्ट विचारधाराओं पर आधारित दो या तीन अखिल भारतीय स्तर के दलों की आवश्यकता है, जिसके सदस्य साफ-सुथरी छवि के लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास रखने वाले एवं राष्ट्र विकास और राष्ट्र गौरव को अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने वाले हों।

दबाव समूह (Pressure Groups)

सामाजिक परिवर्तन में दबाव समूहों का विशिष्ट महत्त्व है। एक समय ऐसा भी था जब दबाव तथा हित समूहों को अनैतिक माना जाता था। 'लॉबी' शब्द को हेय दृष्टि से देखा जाता था और इसे धोखा, भ्रष्टाचार, बुराई आदि का प्रतीक माना जाता था। किन्तु वर्तमान समय में दबाव तथा हित समूहों को लोकतंत्र का पक्ष पोषक एवं सहयोगी माना जाने लगा है। विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्था में इन समूहों का महत्त्व और योगदान इतना अधिक बढ़ गया है कि इन्हें अब राजनीतिक क्रियाशीलता एवं सार्वजनिक नीतियों के प्रभावशाली क्रियान्वयन के लिए स्वास्थ्यजनक तत्व भी स्वीकार किया गया है। दबाव समूह सदा ही सभी प्रकार के समाज एवंश ासनम ेंि वद्यमानर हेह ैंत थाए कस ामाजिकस ंस्थाके रू पम ें सामाजिक बदलाव, सामाजिक परिवर्तन में सहयोग करते हैं। दबाव समूह ऐसे स्वयंसेवी समूह होते हैं जो जनता के विशेष हितों की समाज में रक्षा करते हैं। इनके सार्वजनिक एवं सामाजिक हित होते हैं। ये समूह सरकार की नीति-निर्धारक प्रक्रिया को बाहरी दबाव डालकर प्रभावित करते हैं।

दबाव समूह: अर्थ एवं परिभाषा– दबाव समूह को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है। हित समूह गैर सरकारी संगठन, लाबीज, अनौपचारिक संगठन, गुट इत्यादि शब्दों का प्रयोग दबाव समूह के लिए किया जाता रहा है। प्रत्येक देश व समाज में सैकड़ों/अनेकानेक हित समूह होते हैं, किन्तु जब वे सत्ता को प्रभावित करने के इरादे से राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय हो जाते हैं तो दबाव समूह बन जाते हैं।

प्रो. मदन गोपाल गुप्ता के अनुसार, ''दबाव समूह वास्तव में एक ऐसा माध्यम है जिनके द्वारा सामान्य हित वाले व्यक्ति सार्वजनिक मामलों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। इस अर्थ में ऐसा कोई भी सामाजिक समूह जो प्रशासनिक व विधायी दोनों ही प्रकार के निर्णयकर्ताओं को, सरकार पर नियंत्रण प्राप्त करने हेतु कोई प्रयत्न किये बिना ही प्रभावित करना चाहता है, तो वह दबाव समूह कहलायेगा। वस्तुत: दबाव समूह एक ऐसा माध्यम है जिनके द्वारा सामान्य हित वाले व्यक्ति सार्वजनिक मामलों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। इस अर्थ में ऐसा कोई भी सामाजिक समूह जो प्रशासनिक व संसदीय दोनों प्रकार के पदाधिकारियों को, सरकार पर नियंत्रण प्राप्त करने हेतु कोई प्रयत्न किये बिना ही प्रभावित करना चाहते हैं तो दबाव समूह की श्रेणी में आयेंगे। दबाव व हित समूह पूरी तरह से संगठित समूह हैं, जिनके सार्वजनिक व सामाजिक होते हैं तथा ये समूह सरकार की नीति-निर्धारक प्रक्रिया को बाहरी दबाव डालकर प्रभावित करते हैं। दबाव समूहों की सदस्यता स्वैच्छिक होती है। इनका कार्य बहुत ही सीमित व संकीर्ण होता है। इनका चरित्र बहुत ही अनौपचारिक, संकीर्ण और गैरमान्यता प्राप्त होता है। ये दबाव समूह राजनीतिक दलों की तरह चुनाव में भाग नहीं लेते हैं परन्तु देश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये अनेक तकनीकों के माध्यम से सरकार पर दबाव डालते हैं। इसी कारण इन्हें दबाव समूह कहा जाता है। ये जनमत को लामबंद करने में सहायक होते हैं।

दबाव समूहों का महत्त्व

1. **जनतांत्रिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति के लिए दबाव समूह–** दबाव समूह को लोकतंत्र की अभिव्यक्ति का साधन माना जाता है। लोकतंत्र की सफलता के लिए लोकमत तैयार करना आवश्यक है ताकि विशिष्ट नीतियों का समर्थन अथवा विरोध किया जा सके।
2. **शासन के लिए सूचनाएँ एकत्रित करने वाले संगठन के रूप में–** दबाव समूह आँकड़े इकट्ठे करते हैं, शोध करते हैं तथा निष्कर्ष के आधार पर सरकार को कठिनाइयों से परिचित कराते हैं। इस प्रकार शासन की सूचनाओं के गैर-सरकारी स्रोत के रूप में दबाव समूह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।
3. **शासन को प्रभावित करने वाले संगठन के रूप में–** दबाव समूह सामाजिक एवं सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए सरकारी मशीनरी पर उपयोगी एवं सफल प्रभाव डालते हैं।
4. **सरकार की निरंकुशता को सीमित करना–** प्रत्येक शासन व्यवस्था में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ जाती है तो समूची शक्तियाँ सरकार के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। अत: दबाव समूह अपने साधनों द्वारा सरकारी निरंकुशता को परिसीमित करते हैं।
5. **समाज व शासन में संतुलन स्थापित करना–** दबाव समूह के अस्तित्व का लाभ यह है कि विभिन्न सामाजिक हितों के बीच संतुलन-सा बना रहता है। कोई एकमात्र प्रभावशील सत्ता का उदय नहीं होता है।
6. **व्यक्ति व सरकार के मध्य संचार के साधन–** दबाव समूह लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था में व्यक्ति हितों का राष्ट्रीय हितों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं। ये समूह नागरिक व सरकार के मध्य संचार साधन का कार्य करते हैं इसलिए इन्हें गैरसरकारी संचार सूत्र कहा जा सकता है।

दबाव समूहों का वर्गीकरण– जैसा कि हम पढ़ चुके हैं कि दबाव समूह संसार के सभी देशों में पाये जाते हैं। अपने हितों की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों को प्रभावित करते हैं। इनके उद्देश्यों

व लक्ष्यों के आधार पर इन्हें चार वर्गों में विभाजित किया गया है, जो निम्न हैं–

1. व्यावसायिक दबाव समूह– इस वर्ग में उन दबाव समूहों को शामिल किया जाता है, जिनका निर्माण किसी निश्चित पेशे या व्यवसाय के कर्मचारियों द्वारा अपने हितों की रक्षा के लिए किया जाता है। ऐसे बड़े व्यावसायिक घराने, जिनके पास संसाधनों की प्रचुरता है, तकनीकी व प्रबंधन के क्षेत्र में कर्मचारियों की उपलब्धता है तथा जिनके सरकार के संभ्रांत वर्गों, मीडिया, प्रशासन और विपक्षी दलों से अच्छी जान-पहचान व सम्बन्ध होते हैं, उनके नियंत्रण में सबसे संगठित व शक्तिशाली दबाव समूह होते हैं।

अनेक व्यावसायिक घरानों का प्रभाव भारतीय संसद तथा विधानमण्डल में है। उनके पास ऐसे प्रतिनिधि व जनसम्पर्क अधिकारी हैं, जो प्रशासन व उच्च नौकरशाही से सम्पर्क बनाये रखते हैं। उदाहरण के लिए फिक्की (FICCI)। फिक्की निजी क्षेत्र में सबसे बड़ा प्रभावशाली संगठन है। यह लगभग 40,000 प्रतिष्ठानों का प्रतिनिधित्व करता है। इसके साथ एक बड़ा व्यापारिक कारपोरेट जगत है। राजनीतिक दल निधि इत्यादि प्राप्त करने के लिए इन पर आश्रित हैं। इसके बदले में राजनीतिक दल इन्हें कारोबार शुल्क, पूँजी निवेश एवं अन्य करों में छूट देते हैं। आज के भूमण्डलीकरण एवं उदारवाद के दौर में फिक्की की भूमिका बढ़ गई है विशेषकर आर्थिक एवं वाणिज्यिक नीतियों सम्बन्धित मुद्दों पर सरकार इन समूह के विचार सुनती है तथा सलाह भी लेती है।

कुछ अन्य व्यावसायिक दबाव समूह हैं जैसे एसोसियेट चेम्बर ऑफ कॉमर्स, कनफेडरेशन ऑफ इण्डियन इण्डस्ट्री, टाटा ग्रुफ ऑफ इण्डस्ट्रीज, बिरला, डीसीएम, डालमिया, गोदरेज, हिंदुस्तान लीवर आदि। ये सभी सरकार की नीतियों व कानून को प्रभावित करते हैं।

पेशेवर दबाव समूह में किसान संगठन, अध्यापक व छात्र संगठन, ट्रेड यूनियन, अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद्, अखिल भारतीय डाक एवं मजदूर इत्यादि। ऐसे संगठन सरकारी नीतियों को आंशिक रूप से प्रभावित करते हैं।

राजनीतिक दल अपने हितों की पूर्ति के लिए किसानों व काश्तकारों का भी इस्तेमाल करते हैं। ऐसे समय में वे एकजुट होकर अपने अधिकारों की माँग करते हैं। कृषि के क्षेत्र में अपने हितों की सुरक्षा चाहते हैं, जैसे पैदावार के उचित मूल्य, उर्वरकों पर सब्सिडी, ऋण एवं खाद की उपलब्धता आदि। हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब, कर्नाटक, राजस्थान आदि में प्रभावशाली किसान संगठन जैसे भारतीय किसान यूनियन; सरकार द्वारा कृषि के सम्बनध में लिये जाने वाले निर्णयों को प्रभावित करती है। इस प्रकार के संगठन राष्ट्रीय जागरूकता एवं वर्ग चेतना को सुनिश्चित आकार प्रदान करते हैं। इनके पास समाज के उपेक्षित व निर्धन वर्ग की बेहतरी के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति तथा एकात्मकता होती है किन्तु पूँजी की ताकत नहीं होती है।

शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों में भी छात्रों, अध्यापकों, गैर-व्यावसायिक कर्मचारी वर्गों का अपना संगठन है, जिनके द्वारा जनमत को लामबन्द करते हैं तथा अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए सरकार पर प्रभाव डालते हैं।

2. सामाजिक सांस्कृतिक दबाव समूह– ऐसे बहुत से सामाजिक सांस्कृतिक दबाव समूह हैं जो सामुदायिक सेवाओं से सरोकार रखते हैं तथा सम्पूर्ण समुदाय के हितों को बढ़ावा देने के लिए कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और दबाव समूह भी हैं जो भाषा एवं धर्म प्रचार के लिए कार्य करते हैं। जैसे आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, जनसेवा संघ, जमात-ए-इस्लामी, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधन कमेटी, पारसी अंजुमन, यंग मैन ईसाई, विश्व हिन्दू परिषद्, संस्कृत साहित्य अकादमी, पंजाबी अकादमी, मराठी संघ, भारतीय आदिम जाति संघ, शरणार्थी लोक समिति आदि।

3. संस्थागत दबाव समूह– ऐसे भी कई दबाव समूह हैं जो सरकारी ढाँचे के भीतर ही काम कर रहे हैं। ये दबाव समूह बिना राजनीतिक पद्धति में शामिल हुए, सरकार की नीतियों को अपने हितों के लिए प्रभावित करते हैं। जैसे–सिविल सर्विस एसोसिएशन, पुलिस वेलफेयर संगठन, गजेटेड ऑफिसर यूनियन, आर्मी ऑफिसर संगठन, डिफेन्स पर्सनल एसोसिएशन, रेडक्रॉस सोसायटी आदि। इन दबाव समूहों द्वारा स्थानान्तरण, अवकाश नियम, महँगाई भत्ता निर्धारण जैसे मामलों पर दबाव बनाया जाता है। वैसे तो इनके कार्य सार्वजनिक होते हैं परन्तु ये सरकारी तंत्र के भीतर रहकर ही सक्रिय बने रहते हैं।

4. तदर्थ दबाव समूह– कुछ दबाव समूह किसी विशेष मुद्दे को लेकर सरकार पर दबाव बनाने के उद्देश्य से बहुत थोड़े समय के लिए अस्तित्व में आते हैं तथा उद्देश्य पूर्ति के बाद समाप्त हो जाते हैं। प्राकृतिक आपदाओं की विषम स्थिति में ये दबाव समूह अपने हित में सरकार की नीतियों को प्रभावित करने के लिए दबाव डालते हैं। जैसे–उड़ीसा रिलीफ ऑर्गेनाइजेशन, भूदान अनुयोजना, कावेरी वाटर डिस्ट्रीब्यूशन एसोसिएशन, गुजरात रिलीफ ऑर्गेनाइजेशन इत्यादि।

दबाव समूह की भूमिका– दबाव समूहों की गतिविधियाँ 'लॉबी' नाम से प्रचलित हैं। 'लॉबी' एक अमरीकी शब्द है, लेकिन इसक प्रयोग आजकल यूरोप के देश जापान एवं अन्य देशों में भी किया जाता है। यह सदन के भीतर लॉबी की ओर इंगित करता है। जहाँ सदस्य व विधायक सदन से सम्बन्धित कार्यवाहियों पर चर्चा करते हैं।

भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक प्रणाली में दबाव समूह महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करते हैं। ये जनता एवं राजनीतिक दलों के बीच एक कड़ी के रूप में तथा संचार के एक साधन के रूप में कार्य करते हैं। ये समाज के लोगों को बहुत से सामाजिक, आर्थिक मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाते हैं तथा उन्हें राजनीतिक रूप से शिक्षित भी करते हैं। ये बहुत ही प्रभावशाली नेतृत्व का निर्माण भी करते हैं तथा भविष्य के नेताओं को एक प्रशिक्षण मंच मुहैया कराते हैं। ये समाज के बहुत से परम्परागत मूल्यों के बीच के अन्तर को कम करने का प्रयास भी करते हैं। एकता एवं

अखण्डता की स्थापना ही दबाव समूह के कार्यों का परिणाम है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दबाव समूह सरकार व प्रशासन दोनों की नीतियों को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार राज व्यवस्था में विदेशी लॉबी भी सक्रिय रहते हैं। विदेशों के सरकारी व गैर सरकारी हितों के संरक्षक प्रतिनिधि विदेशी लॉबी कहलाते हैं। राजनयिक प्रतिनिधि एवं जासूसीके क ार्यक रनेव ालेभ ीि वदेशील ॉबीह ोह ैं ाि वश्वब ैंकके तकनीकीि वशेषज्ञत थाअ ार्थिकम ददद ेनेव ालीि वदेशीस ंस्थाओंके प्रतिनिधि भी लॉबिंग का कार्य करते हैं। वे अपनी विचारधारा का प्रचार करते हैं। राजनीतिक दलों को आर्थिक सहायता एवं प्रशासकों को विदेशी कम्पनियों में ऊँचे पद देकर सरकारी फैसले को प्रभावित करते हैं।

भारतीय दबाव समूह की विशेषताएँ– 'बिजनेस एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया' भारतीय राजनीति में व्यापारियों के दबाव समूहों की भूमिका का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करता है। भारत में दबाव समूह की निम्न विशेषताएँ हैं–

1. भारतीय समाज में परम्परावादी दबाव समूह जैसे जाति, धर्म और प्रादेशिक गुट निर्णायक भूमिका अदा कर रहे हैं इसलिए अधिकाँश राजनीतिक दल जाति एवं समुदाय के आधार पर ही अपने अनुयायियों को संगठित कर राजनैतिक दल बनाते हैं और निर्णय को प्रभावित करते हैं।
2. अधिकांश समुदायात्मक दबाव समूहों पर राजनीतिक दलों का नियंत्रण है। उनका नेतृत्व राजनीतिक दलों के हाथ में है। परन्तु एक सत्य यह भी है कि व्यापार उद्योग हित समूह दलीय नियंत्रण से मुक्त है।
3. केन्द्र व राज्य में जब सत्ता शक्तिशाली होती है, तब दबाव समूह कमजोर होते हैं परन्तु जब सत्ता कमजोर होती है तो दबाव समूह शक्तिशाली होते हैं और अपने प्रभाव से निर्णयों को प्रभावित करते हैं।
4. विगत कुछ वर्षों में भारतीय संघ के राज्य भी संगठित होकर केन्द्र के नीतिगत फैसलों को प्रभावित करने लगे हैं।
5. विदेशी सहायता एवं विदेशी तकनीशियनों पर निर्भर होने के कारण विदेशी लॉबी भी हमारी नीतियों को प्रभावित करने हेतु दबाव डालते हैं।
6. समुदायात्मक एवं प्रदर्शनकारी दबाव समूह जनआन्दोलन, हड़ताल, हिंसा, अनशन और सत्याग्रह जैसे अवैधानिक साधनों का प्रयोग करते नहीं हिचकिचाते।
7. भारत में दबाव समूह मुख्यतया प्रशासकों को ही प्रभावित करने में लगे रहते हैं न कि नीति-निर्माताओं को। उन्हें यह विश्वास होता है कि महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं आर्थिक कार्यक्रम यहाँ तक कि रचनात्मक संस्थाओं और कला एवं विज्ञान दोनों के ही विकास एवं उन्नयन का कार्य नौकरशाही के हाथों में है।
8. भारत में आम धारणा दबाव समूहों के कार्य पद्धति के प्रतिकूल है। यह अच्छा नहीं माना जाता है कि दबाव समूह नीति-निर्माताओं का मार्गदर्शन करें। ऐसा माना जाता है कि एक बार सरकार दबाव समूह के सामने झुक जाती है तो फिर कोई भी निर्णय सार्वजनिक हित में नहीं लिया जा सकता।

हमारी राज व्यवस्था की स्थिरता और समुच्चय शक्ति को बढ़ाने के लिए दबाव समूहों को उसमें समुचित स्थान दिया जाना चाहिए। हमारी सरकारी निर्णय प्रक्रिया में दबाव गुटों को स्थान देने के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं–

1. नीति निर्माण के विभिन्न स्तरों पर शासन को प्रभावित हितों पर परामर्श करने की स्थायी एवं अधिकाधिक आदत डालनी चाहिए।
2. सरकार की परामर्शदात्री समितियों में दबाव समूह के सदस्यों को सहसदस्यता प्रदान की जानी चाहिए।
3. राज्यसभा एवं विधान परिषदों में दबाव समूह के सदस्यों का प्रतिनिधित्व निर्धारित किया जाना चाहिए। हालांकि इसके लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता पड़ेगी।
4. विभिन्न सरकारी विभागों के परामर्शदात्री समिति/निष्पादन समिति में भी दबाव समूह के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया जाना चाहिए।
5. स्थानीय प्रशासकों के निर्णय स्थानीय समुदाय को प्रभावित करते हैं। अत: स्थानीय प्रशासकों को भी किसी भी निर्णय के क्रियान्वयन से पूर्व दबाव समूह के सदस्यों को विश्वास में लेने की आदत डालनी चाहिए।

अन्त में दबाव दबाव समूहों से अपेक्षा की जाती है कि वे सामाजिक एवं सार्वजनिक हित की अवधारणा को स्वीकार करते हुए सार्वजनिक जीवन की अभिवृद्धि एवं उन्नति के लिए अपने आप को प्रस्तुत करेंगे। विदेशी 'लॉबी' का सामना करने के लिए राष्ट्रीय इच्छाशक्ति एवं राष्ट्रीय भावना विकसित करना अपरिहार्य है।

भारतीय राजनीति के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित दबाव समूहों की भूमिका के विश्लेषणोपरांत यह स्पष्ट है कि इन्होंने भारतीय राजनीति को प्रभावित कर अपने समूह की विशिष्ट हितों की पूर्ति में कमोबेश सफलता प्राप्त की है और अपने-अपने समूहों के हितों को सिद्ध करने के प्रयास में राजनीतिक निर्णयन प्रक्रिया में संतुलन स्थापित करके भारतीय लोकतंत्र को मजबूत किया है। परन्तु राजनीतिक दलों के साथ इनकी प्रत्यक्ष सम्बद्धता भारत में सफल लोकतंत्र के लिए इनकी वास्तविक भूमिका के मार्ग में बाधक रही है क्योंकि राजनीतिक दलों ने इनको कमजोर किया है और ये सरकार पर पूर्ण संगठित दबाव डाल पाने में अक्षम रहे हैं। इन तथ्यों को श्रमिक संगठनों, छात्र संगठनों एवं किसान संगठनों के हितों की हो रही उपेक्षा के रूप में स्पष्ट देखा जा सकता है।

अत:भ ारतम ेंल ोकतंत्रके क ार्यचालनए वंग ्रामीणस ामाजिक परिवर्तन हेतु दबाव समूहों की भूमिका को और संगठित, स्वतंत्र तथा निष्पक्ष बनाये जाने की जरूरत है और यह कार्य राजनीतिक दलों एवं दबाव

समूहों के मध्य प्रत्यक्ष सम्बद्धता को समाप्त करके ही सम्भव है। तभी भारतीय लोकतंत्र, ग्रामीण विकास एवं सामाजिक परिवर्तन के मार्ग में एक कदम और आगे बढ़ाया जा सकता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- पंचायतीराज ग्रामीण समाज में परिवर्तन का प्रमुख उपकरण है।
- संविधान के अनुच्छेद 40 में राज्यों को पंचायतों के गठन का निर्देश दिया गया है।
- संविधान की 7वीं अनुसूची (राज्य सूची) की प्रविष्ट-5 में ग्राम पंचायतों को शामिल करके उनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार राज्य को दिया गया है।
- संविधान के 73वें संशोधन में पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दी गई।
- सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सफलता की जाँच हेतु 1957 में श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल का गठन किया गया।
- पंचायतीराज व्यवस्था के तीन स्तर हैं। पहला ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत दूसरा खण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा तीसरा जिला स्तर पर जिला परिषद्।
- जिन राज्यों की जनसंख्या 20 लाख से अधिक नहीं है, वहाँ पर मध्यवर्ती स्तर अर्थात् खण्ड स्तर पर पंचायतों का गठन करना आवश्यक नहीं है।
- पंचायत के सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण प्रदान किया गया है, जो चक्रानुसार से आवंटित किया जायेगा।
- आरक्षित स्थानों में एक-तिहाई (33 प्रतिशत) स्थान महिलाओं हेतु आरक्षित रहेगा।
- पंचायतीराज संस्थाओं का कार्यकाल पाँच वर्ष की अवधि का होता है।
- 2 अक्टूबर, 1959 को नागौर जिले में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने पंचायतीराज का उद्घाटन किया।
- पंचायतीराज द्वारा सत्ता व शक्ति का विकेन्द्रीकरण हुआ है।
- **राजनीतिक दल–** एक स्वतन्त्र समाज में राजनीतिक दल नागरिकों के उस व्यवस्थित समुदाय को कहते हैं जो शासन तन्त्र को क्रियान्वित करना चाहता है और उसके लिए जनसहमति में भाग लेकर अपने कुछ सदस्यों को सरकारी पदों पर भेजने का प्रयास करता है।
- **राजनीतिकद लक ाग ठन–** राजनीतिक दलों का गठन निम्न आधार पर होता है–1. मनोवैज्ञानिक 2. वातावरण 3. धार्मिक 4. आर्थिक 5. नेतृत्व 6. विचारधारा 7. क्षेत्रीयता 8. भाषायी आधार।
- राजनीतिक दलों के कार्य–(1) सार्वजनिक नीतियों का निर्माण (2) शासन का संचालन (3) शासन की आलोचना (4) चुनावों का संचालन (5) लोकमत का निर्माण (6) शासन व जनता के बीच मध्यस्थता (7) सामाजिक व सांस्कृतिक कार्य।
- राजनीतिक दलों का सामाजिक आधार पर भारतीय लोकसत्ता पर प्रभाव–(1) आर्थिक आधार (2) जाति आधार (3) धर्म आधार (4) क्षेत्रीय एवं भाषायी आधार।
- भारतीय राजनीतिक दलों की चुनौतियाँ–(1) आन्तरिक लोकतंत्र (2) परिवारवाद एवं वंशवाद (3) धन का प्रभाव (4) अपराधीकरण (5) विकल्पहीनता।
- दबाव समूह एक ऐसा माध्यम है जो सामान्य हित वाले व्यक्ति सार्वजनिक मामलों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।
- दबाव समूह सार्वजनिक हित में सरकार के नीति निर्धारक प्रक्रिया को बाहरी दबाव डालकर प्रभावित करते हैं।
- दबाव समूहों की सदस्यता स्वैच्छिक होती है।
- दबाव समूह सभी प्रकार के समाज एवं शासन में विद्यमान हैं।
- दबाव समूह समाज व सत्ता के मध्य योजक कड़ी का कार्य करते हैं।
- दबाव समूह लॉबिंग द्वारा राजनीतिक दलों एवं प्रशासकों को भी प्रभावित करते हैं।
- दबाव समूह चार प्रकार के होते हैं–(1) व्यावसायिक दबाव समूह (2) सामाजिक एवं सांस्कृतिक दबाव समूह (3) संस्थागत दबाव समूह (4) तदर्थ दबाव समूह।
- केन्द्र व राज्यों में जब सत्ता शक्तिशाली होती है, तब दबाव समूह कमजोर होते हैं।
- दबाव समूह, जनआन्दोलन, हड़ताल, हिंसा, अनशन व सत्याग्रह जैसे अवैधानिक साधनों का भी प्रयोग करते हैं जबकि दबाव समूह को नीति-निर्माताओं का मार्गदर्शन करना चाहिए।
- राजनैतिक शुचिता एवं सामाजिक परिवर्तन हेतु दबाव समूह की सकारात्मक राष्ट्रीय विकास में सहायक होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. संविधान के कौनसे अनुच्छेद में राज्यों को पंचायतों के गठन का निर्देश दिया गया है–
   (अ) 42वाँ (ब) 41वाँ
   (स) 40वाँ (द) 39वाँ
2. श्री बलवन्त राय मेहता अध्ययन दल का गठन कब किया गया?
   (अ) 1953 (ब) 1954
   (स) 1956 (द) 1957
3. 73वाँ संविधान संशोधन कब किया गया?
   (अ) 1992 (ब) 1993
   (स) 1994 (द) 1995
4. पंचायती राज व्यवस्था कितने स्तर की है?
   (अ) एक (ब) दो
   (स) तीन (द) चार

5. भारत में राजनीतिक दलों के गठन का आधार निम्न में से क्या है–
   (अ) क्षेत्रीयता (ब) धर्म
   (स) भाषा (द) उपर्युक्त सभी
6. इनमें से क्षेत्रीयता पर आधारित दल कौनसा है?
   (अ) झारखण्ड मुक्ति मोर्चा
   (ब) भारतीय जनता पार्टी
   (स) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी
   (द) इनमें से कोई नहीं
7. इनमें से राष्ट्रीय दल कौनसा है?
   (अ) अकाली दल (ब) नेशनल कॉन्फ्रेंस
   (स) भारतीय जनता पार्टी (द) डी.एम.के.
8. कौनसे दबाव समूह अपनी माँगों को पूर्ण करने में सफल होते हैं?
   (अ) शक्तिशाली (ब) कमजोर
   (स) उदार (द) इनमें से कोई नहीं
9. दबाव समूह एक.....होते हैं।
   (अ) राजनीतिक दल (ब) प्रशासक
   (स) स्वयंसेवी समूह (द) शासन व सत्ता

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. बलवन्त राय मेहता के अनुसार पंचायतीराज की चार विशेषताएँ लिखिए।
2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक.....है। (क्षेत्रीय/राष्ट्रीय)
3. दो राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के नाम लिखिए।
4. दो क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के नाम लिखिए।
5. दबाव समूह की परिभाषा एवं अर्थ स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. राजस्थान में पंचायतीराज की शुरुआत कब व कैसे हुई है?
2. 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतीराज व्यवस्था में क्या प्रावधान किये गये?
3. ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में पंचायतीराज की क्यों आवश्यकता है?
4. राजनीतिक दलों की कोई 5 विशेषताएँ लिखिए।
5. राजनीतिक दलों के गठन के 5 आधार लिखिए।
6. राजनीतिक दल का अर्थ स्पष्ट करें।
7. दबाव समूहों का उदाहरण सहित वर्गीकरण कीजिए।
8. भारतीय दबाव समूह की विशेषताएँ लिखिए।
9. 'लॉबी' क्या है? ये सरकारी निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. ग्रामीण विकास में पंचायतीराज की भूमिका की विस्तृत व्याख्या करें।
2. वर्तमान पंचायतीराज व्यवस्था की समस्याएँ एवं उसके समाधान के उपाय लिखो।
3. पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा ग्रामीण समाज में हुए परिवर्तन पर लेख लिखो।
4. राजनीतिक दल की परिभाषा लिखते हुए उसके महत्त्वपूर्ण कार्यों की व्याख्या करें।
5. राजनीतिक दलों के सामाजिक आधार का लोकतंत्र पर प्रभाव की विवेचना कीजिए।
6. वर्तमान राजनीतिक दलों की चुनौतियाँ एवं समाधान हेतु अपने सुझाव व्यक्त कीजिए।
7. सार्वजनिक एवं सामाजिक हित में दबाव समूह के कार्यों की व्याख्या कीजिए।
8. वर्तमान राजनीति में दबाव समूह की आवश्यकता पर लेख लिखिए।

उत्तरमाला

1. (स) 2. (द) 3. (ब) 4. (स) 5. (द)
6. (अ) 7. (स) 8. (अ) 9. (स)।